क्या है भारत का स्वधर्म

''भारत के स्वधर्म पर हो रहे विधर्म के घातक हमले को रोकने की एक कोशिश है भारत जोड़ो यात्रा।'' मेरा यह संक्षिप्त सा जवाब था यात्रा के दौरान बार-बार इसके औचित्य को लेकर पूछे जा रहे इन सवालों का। जाहिर है इस सूत्र वाक्य से अधिकांश लोगों की जिज्ञासा शांत नहीं होती। उत्तर से अधिक प्रश्न खड़े होते हैं।

भारत का स्वधर्म क्या है? एक व्यक्ति या जाति का स्वधर्म तो सुना है। किसी देश का भी कोई स्वधर्म हो सकता है? कुछ लोगों को स्वधर्म जैसा शब्द सुनकर आशंका होती है कि यह किसी राष्ट्रीय धर्म जैसी कुछ बात है। कुछ देशों में इस्लाम या ईसाई धर्म को आधिकारिक मान्यता है। उसकी तर्ज पर कुछ लोग भारत में हिन्दू राष्ट्र का विचार चलाते रहते हैं। भारत के स्वधर्म का विचार कहीं इस दिशा में तो इशारा नहीं कर रहा? यूं भी भारत के स्वधर्म की खोज कहां करें? इसकी व्याख्या कौन करेगा? शुरूआत भगवद्‌गीता से करते हैं। इसलिए नहीं कि धर्म की अवधारणा की शुरूआत यहां से होती है, बल्कि इसलिए कि वैदिक सभ्यता के धर्म और उसे मिली बौद्ध धर्म की चुनौती का सामंजस्य करते हुए भगवद्‌गीता हमारी सभ्यता के कुछ बुनियादी मूल्यों का सूत्रपात करती है।

गीता का प्रसिद्ध श्लोक है : 'श्रेयान्स्वधर्मो विगुण: परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:।।' (भगवद्‌गीता 3.35) यानी कि अच्छी प्रकार आचरण किए हुए दूसरे के धर्म से, गुणरहित भी, अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है। जाहिर है यहां धर्म का अर्थ मजहब या रिलिजन नहीं है। यह हिन्दू, इस्लाम

या ईसाई वाला धर्म नहीं है, उन्हें पंथ ही कहना चाहिए। यहां धर्म वह है जो धारण करने योग्य है, जो नैतिक है।

साथ ही यह भी स्पष्ट करना जरूरी है कि धर्म की यह व्याख्या ब्राह्मणवादी हो यह जरूरी नहीं है। बेशक भगवद्गीता में स्वधर्म का प्रयोग चतुर्वर्ण की जातिवादी रूढ़ि को पुष्ट करता दिखाई दे सकता है। लेकिन शुरूआत से ही धर्म की अवधारणा की ब्राह्मणवादी और सधुक्कडी व्याख्या की दो धाराएं एक साथ चली हैं। ब्राह्मणवादी धारा ने धर्म को किसी एक जाति, समुदाय या परिस्थिति से जोड़ा, लेकिन सधुक्कड़ी परंपरा ने धर्म को एक सामान्य नैतिक मानदंड के रूप में स्थापित किया। अशोक के शिलालेख का धम्म इसी परंपरा से निकला है। भारत के स्वधर्म की व्याख्या को हमारी सभ्यता की इस उद्दात्त धारा से जोडऩा होगा।

स्वधर्म में दो तत्वों का संगम है : स्व और धर्म। स्वार्थ में स्व है लेकिन धर्म नहीं है। उधर सर्वधर्म में धर्म है, लेकिन स्व नहीं है। स्वधर्म का एक तत्व धारक को इंगित करता है तो दूसरा धारण योग्य की दिशा दिखाता है। स्वधर्म सिर्फ स्वभाव नहीं है, सामान्य वृत्ति नहीं है, बहुमत का रुझान नहीं है। स्वभाव अच्छा हो सकता है तो बुरा भी। सामान्य वृत्ति अक्सर गिरावट की ओर ले जाती है। बहुमत का रुझान दमनकारी और अन्यायपूर्ण हो सकता है। लेकिन स्वधर्म कभी अनुचित नहीं हो सकता। साथ ही स्वधर्म शाश्वत नैतिक मूल्य भी नहीं है, चूंकि हो सकता है कि कुछ शाश्वत मूल्य स्व से जुड़ाव न रखते हों।

स्वधर्म की अवधारणा को समझने के लिए परधर्म, अधर्म और विधर्म का अर्थ भी समझना पड़ेगा। अधर्म को समझना कठिन नहीं है। अधर्म वह जो धर्म के अनुरूप नहीं हो। अगर धर्म सदाचार को पैदा करता है तो अधर्म उस कदाचार की जड़ में है जो धर्म से पलायन या पतन के कारण उत्पन्न होता है। अक्सर

अधर्म पाखंड का रूप लेता है। ध्यान देने की बात है कि अधर्म खुद धर्म पर सवाल नहीं उठाता। कहने के लिए धर्म का सम्मान करता है लेकिन व्यवहार में धर्म की उपेक्षा करता है। सभी मानव समाज में यह सामान्य प्रवृत्ति होती है। सुबह मंदिर जाकर दिनभर पाप के कर्म करना, या फिर अहिंसा की बात कर वचन और कर्म से ड्क्षहसा करना इसके नमूने हैं।

ऐसे अधर्म की उपेक्षा और उसका नकार करना हमारा कत्र्तव्य है । परधर्म इससे बिल्कुल अलग है। परधर्म यानी किसी दूसरे का धर्म। यह धारण योग्य है, लेकिन मेरे समय, स्थान, स्थिति के लिए नहीं है। यह धर्मरूपी है इसलिए आकर्षक है, लुभाता है, पथ विचलित करता है, इसलिए भयावह है। अक्सर किसी दूसरे के स्वधर्म की नकल या गुलामी से परधर्म का आकर्षण पैदा होता है। किसी दूसरे द्वारा बनाए रास्ते पर चलने का आश्वासन और झूठा सुरक्षा बोध हमें परधर्म की ओर खींचता है। आधुनिकता के नाम पर पश्चिमी भाषा, वेशभूषा, भोजन और लटके-झटके की नकल करने की प्रवृत्ति या फिर हमारे बुद्धिजीवियों में यूरोप के विचारों और वादों का अंधानुकरण करना परधर्म के आकर्षण का नमूना है। भागवद्गीता हमें सतर्क करती है कि परधर्म का सम्मान करते हुए उससे बचना ही श्रेयस्कर है।

विधर्म का खतरा अधर्म या परधर्म से अलग है। विधर्म वह है जो धर्म का विरोध करे। विधर्म न सिर्फ धर्म के अनुरूप नहीं है, बल्कि धर्म विरुद्ध चलते हुए धर्म का खंडन करने का काम करता है। यह सबसे खतरनाक विचलन है चूंकि यह स्वधर्म को धर्म मानता ही नहीं, उसे तोडऩे का सतत् प्रयास करता है। जब वैदिक धर्म का मुकाबला जैन और बौद्ध धार्मिक परम्परा से हुआ तो उसकी नजर में यह विधर्म का हमला था। विधर्म का प्रतिकार करना अनिवार्य है।

धर्म की व्याख्या करते हुए विनोबा भावे ने कहा था : ‘स्वधर्म के प्रति प्रेम, परधर्म के प्रति आदर और अधर्म के प्रति उपेक्षा मिलकर धर्म है’। इसमें संशोधन कर यह कहा जा सकता है कि धर्म के पालन का अर्थ है स्वधर्म के प्रति प्रेम, परधर्म के प्रति आदर, अधर्म के प्रति उपेक्षा और विधर्म का प्रतिकार। लेकिन क्या किसी देश का स्वधर्म हो सकता है? हम कैसे कह सकते हैं कि आज भारत में जो हो रहा है वह हमारे देश के स्वधर्म पर हमला है? इस प्रश्न का जवाब अगली कड़ी में।

~ योगेन्द्र यादव